Research Paper | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 9 | SEPTEMBER 2023

किसान आंदोलन और किसान विमर्श : एक अध्ययन

आत्माराम [1] | डॉ. गोपीराम शर्मा [2]

[1] सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, डॉ. भीमराव अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर राजस्थान, 335001.

[1] सह आचार्य, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, 335001.

ABSTRACT:

भारत कृषि प्रधान देश है इसी कारण महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गांव में बसती है। प्राचीन काल से ही जीविका का आधार कृषि रही है। परंतु पराधीनता के समय में किसानों और कृषि की हालत ठीक नहीं रही। ब्रिटिश काल में अंग्रेजों ने भारत की लगान पद्धति में अनेक परिवर्तन किए। स्थाई बंदोबस्त, रैयतवाड़ी, महालवारी व्यवस्था ने जमींदारों को किसानों से लगान वसूल करने के असीम अधिकार दिए। इन सभी व्यवस्थाओं ने किसानों व शासन व्यवस्था के बीच मध्यस्थों की संख्या में वृद्धि कर दी। इन कारणों से किसान साहूकारों के ब्याज के मकड़जाल जाल में फंसे लगे और धीरे-धीरे जमीन से हाथ धोने लगे। इन स्थितियों में किसानों ने सरकार के खिलाफ आंदोलन शुरू किए।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अनेक आंदोलन किसानों ने किए। स्वतंत्रता के बाद सरकारों ने किसानों के लिए हितकारी नीतियां नहीं बनाई। औद्योगिकरण, भौतिकता के प्रभाव के कारण कृषि और किसानों को हाशिए पर ला दिया। समाज के साथ-साथ साहित्य में भी किसानों को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया गया। एकाध रचनाओं को छोड़कर किसानों के नाम पर कोई विमर्श नहीं था। आज आधुनिक कविता और गद्य में किसान विमर्श उठ खड़ा हुआ है। जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व किसान आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को अपनी आवाज सुनाई थी, इसी प्रकार 'किसान विमर्श' वर्तमान में किसानों की समस्या बुलंद कर रहा है।

KEYWORDS:

किसान आंदोलन, विमर्श, स्वतंत्रतापूर्व, जीविका का आधार, मानसून, महात्मा गांधी, कंपनी शासन, इतिहास नील की खेती, भौतिकता, औद्योगिकरण, प्रेमचंद, हिंदी कविता, उपन्यास, बंगाल का अकाल, सामाजिक समस्याएं, नागार्जुन, स्थाई बंदोबस्त, महालवाड़ी।

भारत में कृषि प्राचीन काल से किसानों की तथा ग्रामीण जनता की जीविका का प्रमुख आधार रही है। भारत गांव का देश है इसलिए महात्मा गांधी ने कहा था 'भारत की आत्मा गांव में बसती है।' भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर रहती है और मानसून हमेशा अनिश्चित रहा है। विदेशी शासन से पूर्व तक भारतीय शासक लगान और मानसून के बीच संबंध स्थापित करते रहे। परंतु विदेशी पराभव के काल में लगान बढ़ता गया और मानसून की मार भी।

अंग्रेजी शासन के दौरान किसानों की स्थिति बहुत अधिक खराब हो गई, क्योंकि इसी समय से कृषि का वाणिज्यिकरण प्रारंभ हो गया। इतिहासकारों के अनुसार यह वाणिज्यिकरण एक कृत्रिम और थोपी हुई प्रक्रिया की तरह था। जिससे वास्तविक समृद्धि उत्पन्न नहीं हो रही थी, बल्कि विभेदीकरण जन्म ले रहा था। इतिहासकार सुमित सरकार लिखते हैं-

''वाणिज्यीकरण का सही-सही प्रतिमान प्रत्येक फसल के लिए भिन्न होता था। इस प्रकार चाय की खेती के लिए जिसका आविष्कार कम जनसंख्या वाले क्षेत्र में हुई था, श्वेतों की प्रत्यक्ष प्रबंध वाले बागानों की आवश्यकता थी। इसमें श्रमिकों की भर्ती दूर दराज के क्षेत्र से अनुबंध पत्रों की पद्धति द्वारा की जाती थी, जो लगभग दासता जैसी ही थी। मध्य बंगाल में नील की खेती मुख्यतः किसान स्वयं करते थे किंतु अनिच्छापूर्वक, क्योंकि गोरे साहब उन्हें जबरन पेशगी रुपया देकर नील की खेती करने को बाध्य करते थे।"[1]

भारत में कंपनी का शासन सबसे अधिक कलंकपूर्ण अध्याय है। अंग्रेज भारत में व्यापार करने आए थे, परंतु हमारी फूट का लाभ उठाकर यहां के शासक बन गए। शासक बनने पर भी अपनी धन कमाने की तृष्णा को वे छोड़ ना सके। शासन-सत्ता का उपयोग भी उन्होंने भारत के आर्थिक शोषण के लिए किया। उनके काले कारनामों के इतिहास में अनेक पृष्ठ रंगे पड़े हैं। उन्होंने प्लासी के युद्ध के साथ ही ऐसी लूट शुरू की, जो स्वाधीनता तक बदस्तूर जारी रही। विदेशियों के दो कथनों को यहां उद्धृत किया जा रहा है जिससे भारत की दशा का वर्णन ठीक से मालूम हो जाता है। पहला कथन फ्रांसीसी यात्री बर्नर का है, जो 1700 के भारत की आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए लिखता है-

''यह भारत एक अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का सोना चांदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आकर जमा होता है और जिसे बाहर निकलने का एक भी रास्ता नहीं मिलता। मैंने देखा कि बंगाल मिस्र से अधिक धनी देश है।"[2]

इस प्रकार सम्पन्न और धनी देश जिसके वैभव की कोई थाह नहीं थी, वह विदेशी शोषण से कुछ समय पश्चात ही किस दशा को प्राप्त हो जाता है, इसकी जानकारी दूसरे कथन से मिलती है-

''बंगाल में ब्रिटिश शासन के आरंभ में ही यथासंभव अधिकतम भू-राजस्व उगाहने की क्लाइव और वॉरेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण इतना विध्वंस हुआ कि कॉर्नवॉलिस ने भी शिकायत भरे लहजे में कहा कि 'एक-तिहाई बंगाल एक जंगल में बदल गया है जिसमें केवल वनचर ही रहते हैं।''[3]

इस प्रकार यह 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाला, 'दूध दही की नदी बहने की संज्ञा' पाने वाला देश कंपनी के शासन के बाद दुर्दशा में पहुंच गया, इसका चित्रण विलियम डिग्वी के इस कथन में मिलता है कि- ''बीसवीं सदी के प्रारंभ में, करीब 10 करोड लोग, भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिलता था। इस अध:पतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य एवं उन्नतशील देश में कहीं पर दिखाई नहीं देती।"[4]

1765 में बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी जब कंपनी को मिल गई तब लूट-खसोट और बढ़ गई। लगान के नाम पर किसानों का खून चूसा जाने लगा। स्थाई बंदोबस्त के नाम पर जमीदारों को जमीन ठेके पर देने का निर्णय लिया गया। इसमें किसानों को जमीदारों की दया पर छोड़ दिया गया। बेवरीज ने इस समझौते को किसानों के खिलाफ बताते हुए कहा-

"केवल जमीदारों से समझौता करना किसानों के प्रति अन्याय था।"[5]

रैयतवाड़ी बंदोबस्त और महालवाड़ी बंदोबस्त से भी किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। साधारण किसान इसमें पिसकर रह गए। ताल्लुकेदार, खोट्स, लंबरदार, पटेल जैसे नए वर्ग और स्थापित हो गए। अंग्रेजी काल में लगान में वृद्धि और जमींदारी प्रथा से किसानों की दशा गिरने लगी। जमींदारी प्रथा, भारी कर, लगान, अकाल आदि से कृषि में अवरोध एक सामान्य-सी बात हो गई। अत्यधिक लगान और शोषण के कारण किसानों के पास स्वयं के खाने के लिए अन्न नहीं बचता था, जिसके कारण वह जीवनयापन के लिए साहूकार से कर्ज लेते थे और फिर कर्ज के चक्र में फंसकर जमीन से हाथ धो बैठते थे। इन स्थितियों से परेशान होकर किसान सरकार के खिलाफ विद्रोह करने के मार्ग पर बढ़ चले। इतिहासकार विपिन चन्द्र ने इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि-

"आर. सी. दत्त ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में आगे चलकर लिखा, '1812 की पार्लेमेंटरी सेलेक्टरी कमेटी के प्रयासों का उद्देश्य यह पता लगाना था कि उनकी (भारतीय कारखानेदारों) जगह ब्रिटिश कारखानेदारों को कैसे दी जाए और भारतीय

उद्योगों की कीमत पर ब्रिटिश उद्योगों को कैसे प्रोत्साहित किया जाए।"[6]

1857 के असफल विद्रोह के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला था, क्योंकि ब्रिटिश सरकार तथा देशी रियासतों के बीच का यह विद्रोह किसानी के शोषण से ही उपजा था। स्वतन्त्रता से पूर्व के जितने भी किसान आन्दोलन हुए थे, उनमें से अधिकांश अंग्रेजों के खिलाफ थे, जैसे नील किसानों का आन्दोलन, पावना विद्रोह, तेभागा आन्दोलन 1946, चम्पारण का सत्याग्रह और 1928 बारदोली आन्दोलन प्रमुख रहे। इनमें से कुछ का नेतृत्व में गाँधीजी और सरदार पटेल जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेताओं ने किया। इसके अतिरिक्त दक्कन का विद्रोह, एका आन्दोलन 1919, मोपला विद्रोह 1920, कूका विद्रोह 1872, जयंतिया विद्रोह 1860-63, फूलगुडी का दंगा 1861, महाराष्ट्र किसान विद्रोह 1872, रामोसी किसानों का विद्रोह 1872-1920, ताना भगत आन्दोलन 1914, तेलंगाना आन्दोलन 1946, बिजोलिया किसान आन्दोलन 1947, खेड़ा सत्याग्रह 1918 आदि। इन आंदोलनों ने ब्रिटिश अपनी साथियों के विरुद्ध भारतीय जनता को संगठित करने एवं जन्म तैयार करने में भूमिका निभाई। किसान आंदोलन का केंद्र राजस्थान बन गया। हालांकि इन आंदोलनों में कांग्रेस का पूर्ण सहयोग नहीं मिल सका। सुमित सरकार लिखते हैं कि-

"1920 के पूरे दशक में राजस्थान सामंत विरोधी किसान आंदोलन का केंद्र बना रहा। मई 1922 में मेवाड़ पुलिस ने मोतीलाल तेजावत द्वारा प्रेरित भील आंदोलन को दबाने के लिए पूरे दो गांव को जलाकर राख कर दिया था। 1927 में बिजोलिया फिर अगली पांत में आ गया था। वहां के किसान विजय सिंह पथिक, माणिक्य लाल वर्मा और हरि भाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में नए महसूलों एवं बेगार के विरुद्ध सत्याग्रह के नए तरीके अपना रहे थे।"[7]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय कृषि व्यवस्था संकटों से ही गुजरती रही। 20वीं सदी का अंतिम दशक और 21वीं सदी का आरंभिक दशक भारतीय समाज में बहुत परिवर्तनकारी साबित हुए। आजादी से पहले कृषि अर्थतंत्र कमजोर था, किसान विद्रोही हो रहे थे और आंदोलन कर रहे थे। किसानों के सूदखोरों के जाल में फंसने और कर्ज के बोझ तले दबे होने के कारण आत्महत्या जैसी स्थितियां नहीं थी जो धीरे-धीरे स्वतंत्रता के बाद देखने को मिलने लगी।

भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद और सूचना प्रौद्योगिकी ने जीवन और समाज को बहुत अधिक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद ग्राम और जन सामान्य की समस्याएं समाप्त हुई नहीं और इस काल में अनेक समस्याएं नई उठ खड़ी हुई हैं। जैसे-जैसे आधुनिकता और गतिशीलता बढी है, देसी तकनीकी जो पर्यावरण के अनुकूल ही रहती है, समाप्त हो गई। इसी के साथ आयातित तकनीक पर किसान निर्भर होते गए। कृत्रिम रूप से तैयार किए गए खाद-बीज और कीटनाशकों पर निर्भरता के कारण किसान कंपनियों के गुलाम बनते जा रहे हैं। बीजों पर उद्योगपतियों का एकाधिकार हो रहा है। परंपरागत बीज भुला दिए गए हैं, हाइब्रिड बीजों को बेचने वालों से लेकर उसे उगा रहे हैं। अब किसान फसलों से बीज तैयार नहीं कर सकते।

किसानों की इस दशा समाज समझ नहीं रहा है, न ही साहित्य। साहित्य में केवल प्रेमचंद का 'गोदान' और 'पूस की रात' जैसी एक-दो रचनाएं मिल जाती है। यदि हम आरंभ से देखें तो कवियों ने थोड़ा बहुत किसानों के बारे में साहित्य में चिंता व्यक्त की जो आज किसान विमर्श के रूप में सामने आयी है।

भारतीय किसान की किसी दयनीय स्थिति का वर्णन हमें हिंदी साहित्य में मिलता है। तुलसीदास ने भी कवितावली में 'खेती ने किसान को…'कहकर किसानों की दशा का वर्णन किया था। आधुनिक हिंदी कविता में भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त प्रेमघन आदि ने किसान जीवन की विसंगतियों को उभरा है। प्रेमचंद का लगभग पूरा साहित्य गांव और किसान को केंद्र में रखकर लिखा गया। प्रेमचंद का अधिकतर साहित्य सामाजिक समस्याओं और उनके निराकरण के प्रयास पर आधारित है। किसान और उनके जीवन शैली रहन-सहन खानपान, रीति रिवाज, तीज-त्योहार आदि का वर्णन प्रेमचंद के साहित्य में मिलता है उनकी कृति प्रेमाश्रम, कर्मभूमि और गोदान को किसान साहित्य की वृहत्त्रयी मानी जाती है। डॉ रामविलास शर्मा लिखते हैं-

"उन्होंने उसे धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपना कथा विषय बनाया, जिसे भरपूर निगाह से देखने का हियाव ही बड़ों बड़ों को न हुआ था।"[8]

हिंदी कविता में भी किसानों की मार्मिक वेदना मिलती है। नागार्जुन ने भी अपनी कविता के माध्यम से किसानों की समस्याओं को बयां किया। 1951-52 में पड़े अकाल पर नागार्जुन की लिखी कविता भारत की वास्तविक स्थिति दर्शाती है-

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुत्तिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।।"[9]

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में मजदूरों और किसानों की दुर्दशा का चित्रण मिलता है। कवि केदार दुखी आदमी के साथ केवल सहानुभूति ही नहीं रखते बल्कि उनके दुःख में शरीक होकर उनके दुःख-पीड़ा की अनुभूति की वकालत भी करते हैं। इसीलिए किसानों का सुख-दुःख, आशा निराशा का जीवन उनकी कविताओं में मिलता है। केदार इस धरती पर पहला और सच्चा हक किसान का मानते हुए लिखते हैं-

"यह धरती है उस किसान की
जो मिट्टी का पूर्ण पारखी
जो मिट्टी के संग साथ ही
तपकर, गलकर, जीकर, मरकर,
खपा रहा है जीवन अपना
देख रहा है मिट्टी में
सोने का सपना
यह धरती है उसे किसान की।"[10]

त्रिलोचन की कविता में जहां कृषक जीवन की पीड़ा है, वही संघर्ष की भावना भी। मैनेजर पांडेय कहते हैं कि- "त्रिलोचन किसान जीवन की करुण कहानी ही नहीं कहते, उसके स्वाभिमान की रक्षा को महत्त्व देते हैं। उनका किसान और अभाव में जीता है लेकिन अभाव से हारता नहीं।"[11]

त्रिलोचन जिस किसान का चित्रण करते हैं, वह संघर्षों में तपा हुआ है और वास्तविकता के धरातल पर उतरा हुआ दिखाई देता है। त्रिलोचन लिखते हैं-

"अगर ना हो हरियाली
कहां दिखा सकता हूं?
फिर आंखों पर मेरी चश्मा हरा नहीं है।
यह नवीन ऐयारी मुझे पसंद नहीं है।
जो इसकी तैयारी करते हो वह करें।
अगर कोठरी अंधेरी तो उसे
अंधेरी समझने कहने का
मुझको है अधिकार।"[12]

हिंदी कविता के अलावा गद्य में भी किसान वेदना की अभिव्यक्ति पर्याप्त रूप से हो रही है। केवल प्रेमचंद ही नहीं उसके बाद अनेक उपन्यासकारों ने किसान जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासकारों में शिवपूजन सहाय, फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, काशीनाथ सिंह, संजीव, राही मसूम रजा, भगवान दास मोरवाल इत्यादि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। हिंदी उपन्यास साहित्य में किसानों और गांव के लोगों के रहन-सहन, वहां की परंपराएं, जमीदारों और साहूकारों द्वारा किए गए शोषण, रूढ़ियां, रीति रिवाज, अंधविश्वास, टूटते किसान परिवार, बिखरते खेतों का जीवंत चित्रण मिलता है। प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, गोदान, रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेश्वर नाथ, मेहपुरा, मैला आंचल, रेहन पर रग्घु, सती मैया का चौरा, फांस आदि उपन्यासों में किसानों की उपस्थिति उनकी समस्याओं और संघर्षों का चित्रण किया गया है।

Conclusions

निष्कर्षत:

कह सकते हैं भारतीय जीवन और समाज में कृषि और पर्यावरण का सदैव महत्त्व रहा है। समय के साथ हम औद्योगिकरण और तकनीकी की ओर मुड़े तथा हमने आधुनिकता को

अपनाते हुए परंपराओं को भुला दिया। पराधीनता के काल में कृषि का ह्रास विदेशी नीतियों के कारण हुआ। स्वतंत्रता के बाद भौतिकता और औद्योगीकरण की ओर झुकाव ने ही कृषि और किसान को हाशिए पर ला दिया है।

पराधीनता के समय किसानों ने अनेक आंदोलन किए और उसका लाभ विदेशी सत्ता को भगाने में भी मिला। आज साहित्य के द्वारा किसान विमर्श को उठाया जा रहा है कि किसानों की स्थिति बद से बदतर हो रही है, इस पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। कृषि और किसान को महत्त्व देकर हम अपने पूरे समाज को महत्व देंगे, यह हमारे समझने की बात है।

REFERENCES

1. सुमित सरकार, हिंदी अनुवाद सुशीला डोभाल - आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 49

2. डॉ आर.एन. चौधरी - भारत का आधुनिक इतिहास, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1996, पृष्ठ 66

3. विपिन चंद्र - आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन ,2015 पृष्ठ 176

4. विद्याधर महाजन - आधुनिक भारत का इतिहास (1707 से आज तक), एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 2018, रामनगर, नई दिल्ली, पृष्ठ 740

5. डॉ आर.एन. चौधरी - भारत का आधुनिक इतिहास, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1996, पृष्ठ 66

6. विपिन चंद्र - आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2015 पृष्ठ 81

7. सुमित सरकार, हिंदी अनुवाद सुशीला डोभाल - आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ 261

8. रामविलास शर्मा प्रेमचंद और उनका युग राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1993 पृष्ठ 44

9. नामवर सिंह (संपादक)- नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 98

10. केदारनाथ अग्रवाल - प्रतिनिधि कविताएं, संपादक अशोक त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 30

11. पांडेय मैनेजर शर्मा - हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृष्ठ 113

12. त्रिलोचन - दिगंत, जगत शंखधर, वाराणसी, संवत 1957, पृष्ठ 25